राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का प्राण भारतीय संस्कृति

डॉ0 निर्मला गुप्ता*

आजकल देश में महत्वपूर्ण उन्नतियॉ हो रही है स्ववंत्रता और स्वराज की हमारे राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ की वर्तमान समय में क्या उपादेयता है हमारा सामान्य उत्तर यही होता है असंगठित और कमजोर राष्ट्र स्वराज का पूर्ण लाभ व उसके फलों का आस्वादन नही कर सकता। ऐसा होना उस बीमार की तरह होगा जिसे न तो भूख लगती है और न पचा पाने का सामर्थ्य है और उसे गरिष्ठ एवं स्वादिष्ट भोजन परोस दिया जाय। यह तो केवल बलवान और स्वस्थ व्यक्ति के लिए ही सम्भव है जो उस भोजन का आनन्द लेकर उसे पचा सके और अधिक शक्तिशाली बने। इस कड़ी में राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ के क्षुधा की पूर्ति भारतीय संस्कृति अपने अथक भोज्य पदार्थों के माध्यम से उनके सम्मुख गुलाबरूपी पुष्प के सदृश्य उनके सम्मुख खड़ी है जिसका रसास्वादन करके वे एक समृद्धिशाली राष्ट्र के निर्माण में अपना महनीय योगदान दे सकते है अस्तु, भारतीय संस्कृति का स्वरूप इस प्रकार है–

संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति– "सम उपसर्ग" कृ धातु से भूषण अर्थ में "सुट" आगम पूर्वक क्तिन प्रत्यय लगाने से संस्कृति शब्द सिद्ध होता है। इस तरह लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनैतिक अभ्युदय के लिए उपर्युक्त मन, बुद्धि, अहंकार आदि की भूषण भूत सम्यक चेष्टायें एवं हलचलें ही संस्कृति है।[1]

संस्कार, संस्कृत, संस्कृति, तीनो शब्द सजातीय है, उनका मूल एक ही है।

सामान्यतः इसका अर्थ परिष्कृत, प्रगतिशील, कल्याणकारी क्रियाकलाप इस प्रकार संस्कृति का अर्थ है सम्यक रूप से किया गया कार्य। व्यापक संदर्भों में संस्कृति मानव तथा मानव समाज के परिष्कार, प्रगति एवं कल्याण हेतु किये गये क्रियाकलापों का समुच्चय है।

सामान्यतः मानव समाज के विकास की व्यष्टिमय एवं समष्टिमय उपलब्धियॉ ही संस्कृति है। संस्कृति शब्द उस अर्थ का भी द्योतक है, जो समस्त मानवता को विशेषता प्रदान करता है। मानवता को विशिष्ट बनाने वाले उसके आदर्श तथा उसकी परम्परायें और मान्यतायें है। जिन विद्वानों में समस्त सीखे हुए व्यवहार को संस्कृति की संज्ञा दी है । संस्कृति शब्द का प्रथम प्रयोग यजुर्वेद में मिलता है–

" अच्छिन्नस्य तदेव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य"
ददितारः स्याम। सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा।[2]

वहां यह शब्द देवताओं के साम प्रदान करने के अर्थ में हुआ है। वेद में सोम मनस्तत्व का प्रतीक है। इसके संयोग में प्राण और भूत में गति की जो दिशा निर्धारित होती है उससे विश्व का स्वरूप बनता और निखरता है। यही मनोयोग का भाव सोम के सेवन, पान और प्रदान में निहित है। इसकी क्रिया को संस्कृति कहा गया है।

इस प्रकार तथ्यों के आलोक यह बात स्पष्ट रूप से उद्घाटित हो जाती है कि भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है इसका मूल स्रोत अज्ञात युग के अन्धकार में निहित है, तथापि ज्ञात युगो में इसकी सतत विकासशील धारा का दर्शन होता है ।

संस्कार और संस्कृति–

संस्कृति से मिलता जुलता शब्द "संस्कार" है। इसका अर्थ वह उपचार है जिससे प्रकृति द्वारा पशु रूप में प्रदत्त बालक का क्रमिक परिष्कार कर उसे सभ्य मनुष्य बनाया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि "संस्कृति" मनुष्य के उस कार्यकलाप का नाम है जो उसके निजी प्रयास से निष्पन्न होकर उसके जीवन की परिस्थिति का परिष्कार करता है ।[3]

इस प्रकार सभी संस्कृतियों में संस्कारों का होना अनिवार्य है। वे उनकी सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्था की कार्यप्रणाली को अभिव्यक्त करते है। भारतीय समाज और संस्कृति में संस्कार का अभूतपूर्व स्थान है । बिना संस्कारों से संस्कृत हुए किसी संस्कृति को "संस्कृति" नही कहा जा सकता। व्यक्ति के

* असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, पी0जी0 कालेज, पट्टी प्रतापगढ़

असंस्कृत स्वरूप को सुसंस्कृत और अनुशासित करने के निमित संस्कारों की नियोजना की गयी है। अतः संस्कृति के मूल में ही संस्कार शब्द सन्निवेष्ठित है।

"संस्कार" शब्द "सम" उपसर्ग "कृ" धातु "ध" प्रत्यय के योग से बना है। इसका अर्थ है शुद्धता या पवित्रता। संस्कृत साहित्य में संस्कार के अनेक अर्थ मिलते है यथा–धार्मिक विधि–विधान, शुद्धि, परिष्कार, शिक्षा, प्रशिक्षण, सौजन्य, धारणा क्रिया की विशेषता, कार्य का परिणाम, पवित्रता, अनुष्ठाान आदि। तंत्रवार्तिक और वेदान्त सूत्र में संस्कार उन क्रियाओं को कहा गया है जो वैयक्तिक जीवन को योग्य, गुणाढ्य, परिष्कृत बनाती है।

अंग्रेजी का सेक्रामेंट शब्द संस्कार के लिए प्रयुक्त होता है इसका अर्थ है धार्मिक विधान । अतः संस्कार व्यक्ति के शारीरिक, सामाजिक ,बौद्धिक और धार्मिक परिष्कार के निमित्त वह धार्मिक क्रिया है जो विशुद्ध–पवित्र अनुष्ठापन में आस्था रखती है। सुचिता–सन्निवेश मनः परिष्करण धर्मार्थ समाचरण, शुद्धि–सन्निधान एवं क्रियागत विधान संस्कार से ही संभव है। संस्कारों के माध्यम से संस्कृति भी व्यक्ति और समाज का परिष्कार करती है और उन्हे सामन्जस्यपूर्ण और अनुशासित बनाता है।

इन्ही संदर्भों में ''संस्कृति का सामान्य अर्थ होता है संस्कार करना या परिमार्जन करना। यह संस्कार या परिमार्जन ही सभ्यता है। संस्कारहीन व्यक्ति को कोई भी सभ्य नही कह सकता है। संस्कृत व्यक्ति ही सभ्य कहलाने का अधिकारी है। इस रूप में ही संस्कृति का सम्बन्ध आत्मा मन तथा अन्तःकरण से निश्चित होता है। संस्कृति के द्वारा उच्च मानसिक उपलब्धि होती है। मानसिक उपलब्धि का क्षेत्र भौतिक भी हो सकता है और आध्यात्मिक भी''[4]

बुद्धि प्रवण होने के कारण अपने उत्तरोत्तर जीवन क्रम के इतिहास में मनुष्य ने जो कुद खोजा, उपलब्ध किया और आविष्कार तथा निर्माण किया यही उसकी सभ्यता है। मनुष्य में इस सभ्यता का जन्म तब हुआ जब वह अपने आदिम वन्य जीवन से उभरकर समाज सापेक्ष हुआ और सोचने विचारने के योग्य बना। व्यक्ति की इस सामूहिक विचार चेतना ने 'सभा' को जन्म दिया और इस सभा में बैठने की समझ रखने के कारण उसे 'सभ्य' कहा गया।

''अपने आर्थिक तथा सामाजिक विकास क्रम में मनुष्य ने सुरूचि, सदभाव, आदर्श, अनुराग और सौन्दर्य की जिस अभिरूचि का निरन्तर परिष्कार तथा प्रसार किया उसकी वही परिस्कृत अभिरूचि संस्कृति की जननी बनी।''[5]

इस प्रकार सभ्यता और संस्कृति का साथ–साथ निर्माण कर मनुष्य ने अपने अस्तित्व के इतिहास का निर्माण किया। तुलनात्मक विश्लेषण की दृष्टि से संस्कृति का आधार मुख्यतया आचारों से और सभ्यता का अधार मुख्यतः विचारों से है। आचारों से संस्कृति का और विचारों से ..... सभ्यता का निर्माण हुआ।

'सभ्य' शब्द का सामान्य अर्थ होता है 'शिष्ट' सभ्य से सभ्यता शब्द बनता है, जिसका अर्थ हुआ शिष्टता। दूसरे शब्दों में सभ्य होने का भाव ही सभ्यता है। सभ्यता या शिष्टता एक सामाजिक गुण है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। और सभ्यता का उदय भी समाज से ही हुआ है। इस दृष्टि से मनुष्य का सामाजिकता का सभ्यता से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

''मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है उसी को संस्कृति कहते है। अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य प्रकृति के साधनों का जिस ढंग से प्रयोग करता है, उससे उसकी 'सभ्यता' का निर्माण होता है। पर चिन्तन द्वारा अपने जीवन को सरस, सुन्दर और कल्याणमय बनाने क लिए मनुष्य जो यत्न करता है, उसका परिणाम संस्कृति के रूप में प्राप्त होता है। मनुष्य ने धर्म का जो विकास किया, दर्शन शास्त्र के रूप में जो चिन्तन किया, साहित्य, संगीत और कला का जो सृजन किया, सामूहिक जीवन को हितकर और सुखी बनाने के लिए जिन प्रथाओं व संस्थाओं को विकसित किया उन सबका समावेश हम 'संस्कृति' में करते है।'' [6]

भारत के सांस्कृतिक जीवन के अन्तर्गत व्यक्ति से लेकर समाज तक, यहां तक कि इनसे सम्बद्ध अनेक संस्थाएं धर्म को ही अपना आधार मानकर चलती है। धर्म ही उनका निर्देशक, पालक एवं नियन्ता है। वर्ण, आश्रम, विवाह, परिवार, संस्कार एवं जाति जैसी सामाजिक संस्थाएं धर्म को ही अपना

जन्मदता स्वीकार करती है और उसी से संचालित होती है। धर्मवादी भारतीय परम्परा वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति में भी दैवी सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है।

प्राचीन भारत के सांस्कृतिक जीवन में धर्म किस सीमा तक व्याप्त था, इसका सहज ज्ञान एक भारतीय के प्रतिदिन के जीवन में सम्पन्न होने वाले विविध कार्यक्रमों से भी हो जाता है। वैदिक मन्तब्य के अनुसार प्रातः काल से लेकर शयनकाल पर्यंत जो–जो विशेष नैत्यिक कर्म करने होते है, वे संक्षेप में निम्नलिखित है–

प्रातः काल के कर्तव्य–

1. शयन से उठकर ईश्वर की स्तुति प्रार्थना।
2. शौच, दन्त धावन, व्यायाम।
3. स्नान।
4. सन्ध्योपासना
5. अग्नि होत्र।
6. स्वाध्याय।
7. पितृ–यज्ञ।
8. बलिवैश्वदेव–यज्ञ।
9. अतिथि–यज्ञ।

सायं काल के कर्तव्य –

1. अग्निहोत्र।
2. सन्ध्योपासना।
3. पितृ–यज्ञ
4. बलिवैश्वदेव यज्ञ।
5. अतिथि यज्ञ।
6. शयन से पूर्व शिव संकल्प की प्रार्थना।

जागरण–बेला में कई पठनीय मंत्रों का विधान किया गया है, इनमें से एक निम्नलिखित है–

''ओं प्राता रत्नं 'प्रातरित्वां' दधाति तं चिकित्वान्। प्रतिगृहता निधन्ते। तेनं प्रजां बर्धयमान आयूं रायस्पोषेण सचते सुवीरः।''[7]

स्नान के समय निम्नलिखित मंत्रों के पाठ का वैदिक विधान किया गया है–

'' ओड्म आपो हिष्ठा मंत्रोभुवस्ता नं ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे।। 7।।
यो वंः शिवतनों रसस्तस्यं भाजयतेह नंः। उशतीरिव मातरः
तस्मा अर गमाम वो यस्य क्षयाय् जिन्वध। आपों यांचामि भेषणम् ।। 8।।

और

''शं न आपो धन्वन्याइः शमु सन्त्वनूप्या। शं, नः खनि त्रिमा आप शत्रुयाः कुम्भ आभृता शिवा नः सन्तु वार्षिकीः।।''[9]

गायत्री मंत्र को पढ़कर शिखा बन्धन का विधान शिखा रक्षणार्थ किया गया है–

''ओड्म भूभुर्वः स्वः तत्संवितुर्वरेण्यं भर्गों देवस्यं धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।''[10]

इसी प्रकार आचमन मंत्रो इन्द्रियस्पर्श मंत्रो, मार्जन मंत्रो, प्राणायाम मंत्रो, मधमर्षण मंत्रो, मनसापरिक्रमा मंत्रो, उपस्थान मंत्रो, गुरूमंत्र, समर्पण मंत्र एवं नमस्कार मंत्र का प्राविधान किया गया है। अधमर्षण मंत्रो में प्रथम इस प्रकार है–

''ओम् ऋतं च सत्यं चाभीद्धान्त पसोडध्यजायत।
ततो राज्यजायत् ततंः समुद्रो अर्णव : ।। [11]

संध्योपासना की समाप्ति पर पढ़ा जाने वाला नमस्कार मंत्र इस प्रकार है–

''ओम् शम्भवायं च मयोभवायं च नमः शड्करायं च।
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।।[12]

भारतीय संस्कृति की धर्मप्राणता का सबसे बड़ा प्रणाम औ क्या हो सकता है कि इसके अन्तर्गत भोजन करने से पूर्व एवं सोने के समय के लिए भी मंत्रों का विधान किया गया है। भोजन आरम्भ करने से पूर्व बोलने का मंत्र इस प्रकार है–

''ओम अन्नपतेडन्नस्य नो देह्मनवीवस्य युष्मिणः।
प्रप्रदातारं तारिष ऊर्ज्ज नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे।। [13]

सोते समय बोलने के मंत्रों में प्रथम मंत्र इस प्रकार है–

'' यज्जागतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। [14]

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाती है कि एक भारतीय हिन्दू की अस्मिता उसके अपने धर्म से सम्बद्ध है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त वह धर्म छत्रछाया में ही रहता है।

अब राजनीति के संदर्भो ने भी धर्म की भूमिका पर दृष्टिपात करना आवश्यक हो जात है। जब राज्य और उसके अंगों प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, उस अवस्था में लोग धर्म के आधार पर ही आदिम समाज की सुरक्षा कर रहे थे–

'' नैव राज्यं न राजासीन्न दण्डो न च दाण्डिक :।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्।। [16]

महाभारत एक स्थान पर स्पष्ट कहता है कि जो धर्मसम्बन्धित हो उसकी को राजा समझना चाहिए–

'' यस्मिन् धर्मो विराजते तं राजानं प्रचक्षते। [17]

राज्याभिषेक के समय राजा को प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि मै मनसा, वाचा, कर्मणा धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करूंगा और कभी भी स्वेच्छाचारिता से काम न लूंगा।

''प्रतिज्ञां चावरोहस्त मनसा कर्मणा गिरा।
पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्मं इत्येव चासकृत्।
यश्चात्र धर्म इत्युक्तों दण्डनीति व्यपाश्रयः।
तमशंकः करिब्यामि स्ववशो न कदाचन।। [18]

इस प्रकार हम देखते है कि धर्म राजा के ऊपर सबसे बड़ा अंकुश था और वह पुरातन धर्मशास्त्र के आधार ही शासन करता था। यद्यपि महाभारत वैदिकोत्तर काल की रचना है , फिर भी उसका वर्ण्य विषय उसकी रचना से पूर्व की स्थिति पर प्रकाश डालता है।

साहित्य संगीत और कला भारतीय सांस्कृतिक जीवन के अभिन्न अंग रहे है। इन्होने भारतीय संस्कृति को जो गौरव प्रदान किया है उसे सम्पूर्ण विश्व श्रद्धापूर्वक स्वीकार करता है। भारत में साहित्य, संगीत एवं कला विहिन मनुष्य को पूंछ तथा सींग रहित पशु माना गया है, परन्तु सांस्कृतिक जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करने वाले इन तत्वों की उद्भावना एवं विकास के पीछे धर्म की ही प्रेरण एवं भूमिका रही है।

ऊपर लिखित कथ्य की पुष्टि में कतिपय उद्धरण दर्शनीय है–

''साहित्यं संगीत कला विहीनः।
साक्षात् पशुः पुच्छविषाण हीनः।।''
''येषां न विद्या न तपो न दानम्,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोकें भुवि भारभूताः
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।''

इसी प्रकार व्याकरण छन्द काव्य और साहित्य, संगीत और नाट्य एवं वैदिक, कर्मकाण्ड, सभी ज्ञान की सामान्य शाखाएं मात्र न होकर ब्रम्हविद्या है। ''व्याकरण शास्त्र वस्तुतः केवल ''ग्रामर'' नहीं है। यह भी ब्रह्मविद्या ही है। इसका मुख्य उद्देश्य वाक्शुद्धि अथवा शब्द संस्कार है। इसलिए ''वाङ्मयानां

चिकित्सतम्' कहा गया है। .....उस समय वह शब्द सिद्ध शब्द अर्थात कामधेनु रूप में प्रकट हो जाता है और लौकिक तथा अलौकिक सर्वविध कल्याण का साधन करता है ।'' [19]

इसीलिए भर्तृहरि ने कहा है कि व्याकरण मार्ग ही मुमुक्षुओं के लिए सरल राज मार्ग है–

''इयं हि मोक्षमाणानं अजिहना राजपद्धति।'

''इसी प्रकार छन्दः शास्त्र केवल 'प्रोसोडी' नही है। यह भी ब्रह्म विद्या है। छन्द से ही जगत की सृष्टि होती है और सृष्टि के अतीत पदमपद को पाने क लिए भी छन्द ही उपाय है। ''छन्दांसिद्दादनात् [20]

''काब्य और साहित्य क्या है ?

ये 'पोएट्री अथवा रेटारिक मात्र नही है। ये भी ब्रह्मविद्या है। प्राचीन काल में कवि–पद ब्रह्मविद समझा जाता था। 'कवयः क्रान्तदर्शिनः' यही प्राचीन दृष्टि है। 'कवि पुराणमनु शासितारम्' इत्यादि वचनों में भी कवि शब्द से ज्ञानी ही माना जाता है। वाक (शब्द) और अर्थ के सहित भाव से ही साहित्य का उद्भव है। वाक् और अर्थ यथाक्रम शक्ति और शिव के वाचक है। शिवशक्ति–सामरस्य ही साहित्य है। इसका आत्मा अथवा प्राण रस है। ह्लादिनी–शक्ति तथा संवित शक्ति इन दो स्वरूप शक्तियों के अभेद से रस का आस्वादन होता है। 'रसो वै सः। वस्तुतः रस स्वयम्प्रकाश ब्रह्मतत्व का ही नामान्तर है।''[21]

''इस प्रकार संगीत–शास्त्र और नाट्य शास्त्र ब्रह्मविद्या है। नाद से सृष्टि होती है तथा नाद में नही लय होता है। नाद का विज्ञान ही संगीत विद्या है। नृत्य–विज्ञान भी वस्तुतः ब्रह्मविज्ञान ही है। नटराजशंकर अथवा नटवर श्री कृष्ण के नृत्य से जगत का उद्भव हुआ है और उसी में उसका पर्यावसान भी होता है।'' [22]

वैदिक कर्मकाण्ड का रहस्य इस समय जगत भूल गया है। वस्तुतः यह भी ब्रह्मविज्ञान की ही अत्युच्च अभिव्यक्ति है। वेदि–तत्व, कुण्ड–तत्व, विभिन्न प्रकार के अग्नितत्व, अग्निचयन, अग्निमंथन आदि व्यापार ब्रह्मविद्या के ही अंगीभूत है।

डा0 गोपीनाथ कविराज जैसे महान विद्वान यदि काम शास्त्र तक में भी ब्रह्मविज्ञान का दर्शन करते है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नही है। वस्तुतः यही दृष्टि भारतीय संस्कृति के समझने की सम्यक दृष्टि है। डा0 कविराज के शब्दों में–

''सच कहा जाय तो प्राचीन काल में कामशास्त्र तक भी ब्रह्मविज्ञान का ही रूप रहा है। यह केवल 'सेक्सुअलसाइन्स' या 'इरोटिक्स' नही है। कामकला–तत्व की अभिव्यक्ति के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। पुरूष और प्रकृति अर्थात नायक और नायिका किस प्रकार मिलित होने पर दोनों के अर्धांग यथावत् मिलकर पूर्णांग अखण्ड ब्रह्मरूप में प्रतिष्ठित हो सकते है, उसी का वहस्य काम–कला विज्ञान में है।''[23]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति का मूलाधार धार्मिक प्रवृत्ति है। समस्त सामाजिक व्यवस्थाएं नैतिक और सात्विक क्रियाएं राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक, कलात्मक, वैज्ञानिक, गतिविधियां सभी धर्म के आधार पर ही निश्चित हुई हे। मनुष्य का कर्म धर्म पर आधरित है। धर्म के बिना कर्म की कोई सार्थकता नही है। अतः मनुष्य से सम्बन्धित सभी कर्म धर्म–समन्वित माने गये है। यदि मनुष्य के साथ धर्म नही होता, तो वह पशु समान होता–

''आहार निद्रा भय मैथुनन्च सामान्यमेतद पशुर्भिनराणाम्।
धर्माहि तेषामधिको विशेषों धर्मेण हीनोः पशुभिः समानाः।।''

धर्म समन्वित कर्मों का विधान इसलिए किया गया था कि–मनुष्य को आध्यात्मिक उपलब्धि प्राप्त हो सके और वह धर्म–संवलित मार्ग पर चल सके। इस लौकिक और पारलौकिक दोनों को सुखी करने का एकमात्र साधन धार्मिकता थी।

भारतीय संस्कृति एक सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक 'मृत्युंजय' संस्कृति है। इसमें एकमात्र मानव–कल्याण की कामना की गई है। देखें–

''न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्ग न पुनर्भुवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।''

भारतीय संस्कृति के कुछ ऐसे तत्व है, जिन्होने विश्व संस्कृति की चेतना को परिष्कृत करने का श्लाघनीय कार्य किया है। वाचस्पति गैरोला के शब्दों में–

''भारतीय संस्कृति के शाश्वत तत्व है सत्य, शिव, सुन्दर। इन शाश्वत तत्वों ने मानव चेतना को संस्कृत और परिष्कृत किया। दर्शन में उसके सत्य स्वरूप का, नीति (अनुशासन) में उसके शिव स्वरूप का और कला में सुन्दर स्वरूप का दिग्दर्शन हुआ है। इन तीनों मूल तत्वों का समाहार ही संस्कृति है, जिसके द्वारा मानवता का हित और कल्याण होता आया है।''[24]

हमारे पूर्वज अपने राष्ट्रीय आदर्शों के प्रति सचेत थे और राष्ट्रीय स्वाभिमान के भाव उनमें जाग्रत थे। यही कारण है कि वे जगत् भर में वंद्य थे। अपनी आन्तरिक गरिमा की चेतना से सम्पन्न, वे विश्व के समक्ष अपनी बातों को आत्मविश्वास के साथ रखते थे। अपने लिए वे जिस 'आर्य' शब्द का प्रयोग करते थे, वह स्वयं ही संस्कृति और चरित्र का द्योतक था। उन्होने सगर्व घोषित किया था कि–

न त्वेवार्यस्य दास्य–भावः
(आर्य कभी दास नहीं हो सकता।) तथा
एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

(समस्त पृथ्वी के मनुष्य इस देख के अग्रजन्मा पुरूषों के चरणों में बैठकर अपने–अपने चरित्र की शिक्षा लें।)

आज भी अपने राष्ट्रीय जीवन और आदर्श के प्रति उत्कट प्रेम और गर्व के भाव ही हमारे देश के वास्तविक उज्जवल स्वरूप को विश्व के समक्ष उपस्थित करने में समर्थ है। इस भूमि के प्रत्येक पुत्र के हृदय में शुद्ध देशभक्ति की ज्वाला प्रज्ज्वलित करने की आवश्यकता है। ऐसे हृदयों की उष्णता और तेजोमयता ही हमारे देश में वर्तमान युग के मूढ़तारूपी अंधकार का निवारण करने में पूर्णतया समर्थ होगी।

संदर्भ :

1. श्री करपात्री जी : हिन्दू संस्कृति विशेषांक, पृष्ठ 35, कल्याण प्रेस, गोरखपुर जनवरी, 1950
2. बुद्ध प्रकाश : भारतीय धर्म एवं दर्शन, प्राक्कथन, पृष्ठ–6
3. बुद्ध प्रकाश : भारतीय धर्म एवं दर्शन, प्राक्कथन, पृष्ठ–6
4. वाचस्पति गैरोला, 'भारतीय संस्कृति एवं कला, पृष्ठ–83
5. वही, पृष्ठ–82
6. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति का विकास पृष्ठ–11
7. ऋग्वेद 1/125/ए
8. अथर्व वेद काण्ड 1/सू0 511
9. अथर्व वेद काण्ड सूक्त 6 मण्डल 4 11
10. यजुर्वेद अ0 36/मण्डल/3 11
11. ऋग्वेद मण्डल 10/सू0 190/मण्डल 1 11
12. यजुर्वेद अध्याय 16/मण्डल 41 11
13. यजुर्वेद अध्याय 11/मण्डल 83 11
14. यजुर्वेद अध्याय 34/मण्डल 1 11
15. यजुर्वेद अध्याय 34/मण्डल 1 11
16. महाभारत शान्ति पर्व, 59/14
17. महाभारत शान्ति पर्व, 90/14
18. महाभारत अनुशासन पर्व, 61/32
19. महामहो पाध्याय डा0 श्री गोपीनाथ कविराज, ''भारतीय संस्कृति एवं साधना'' प्रथम खण्ड पृ0–214
20. वही, पृष्ठ–214
21. वही, पृष्ठ–215
22. वही, पृष्ठ–215
23. वही, पृष्ठ–215
24. वाचस्पति गैरोला, 'भारतीय संस्कृति एवं कला, पृष्ठ–77